छोटे लाल तथा अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
ए.आई.आर. 1979 इलाहाबाद 135

तथ्य

यह याचिका अनुच्छेद 226 के अधीन राज्य न्यायिक सेवा में पिछड़े वर्गों, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों, मिसा (आन्तरिक सुरक्षा नियम) डी.आई.एस. आई. आर. में भूतपूर्व बन्दियों और उनके आश्रितों के लिये राज्य न्यायिक सेवा में पदों के आरक्षण के विरुद्ध चुनौती देने के लिये दायर की गई थी।

प्रार्थी वकील थे और वे राज्य न्यायिक सेवा परीक्षा में बैठे थे। यह परीक्षा 150 अस्थायी पद भरने के लिये अप्रैल 1978 में हुई थी। कुल पदों में से 27 पद अनुसूचित जातियों के लिये, 3 पद अनुसूचित जनजातियों के लिये, 8 पद स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों के लिये, 12 पद सैनिक सेवाओं के अशक्त अफसरों के लिये और 33 पद पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षित थे।

यहां हमें केवल तथाकथित ''पिछड़े वर्गों'' के लिये आरक्षण पर प्रार्थियों की आपत्ति पर विचार करना है।

उत्तर प्रदेश सरकार के एक आदेश में पिछड़े वर्गों में अहीरों , कुर्मियों, और अन्य जातियों को शामिल किया गया था। प्रार्थियों का कहना था कि अन्य इन जातियों के बहुत से व्यक्ति आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए नहीं थे। बहुत से व्यक्ति सम्पन्न थे, बहुत से उच्च शिक्षा प्राप्त थे और उच्च पदों पर थे जबकि अन्य व्यक्ति वकील, डॉक्टर आदि व्यवसाय में थे। अतः सरकारी आदेश में उल्लिखित सभी जातियों को अनुच्छेद 16(4) के विषय क्षेत्र के अनुसार ''पिछड़ा वर्ग'' नहीं माना जा सकता। अतः उनके लिये आरक्षण करने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं है।

वाद-विषय

1. ''नागरिकों का पिछड़ा वर्ग'' पद का विषय-क्षेत्र और विस्तार क्या था। कोई जनसमूह नागरिकों के पिछड़े वर्ग में आता है या नहीं यह निर्धारित करने का मानदण्ड क्या है?
2. क्या उत्तर-प्रदेश सरकार ने ठीक-ठीक निर्धारण किया था कि कोन-कौन पिछड़े वर्गों में शामिल किये जाएं? यदि नहीं, तो क्या 1955,1958 और 1977 में जारी किये गये जी.ओ.एस. अनुच्छेद 15 (4) के अर्थ में 16(4) द्वारा राज्य को प्रदत्त संवैधानिक शक्तियों का दुरुपयोग थे और इसलिये वे शून्य थे।

निर्णय

न्यायालय (न्यायमूर्ति टी.एस. मिश्र और के.एन. गोयल) की यह मान्यता थी कि इन सरकारी आदेशों के अधीन पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण शून्य (व्यर्थ) था।

न्यायालय के विचार में राज्य सरकार में भर्ती के लिये डी.एन.चंदन बनाम मैसूर राज्य,ए.आई.आर. 1971, उच्चतम न्यायालय 1962 के मामले में तीन मूलभूत सिद्धांत स्पष्ट होते हैं अर्थात (i) राज्य को व्यक्तियों के वर्गीकरण, या श्रेणीकरण का निर्धारण करने की शक्ति है जिनसे राज्य सेवाओं में भर्ती की जा सकती है, (ii) अनुच्छेद 15(4) तथा 16(4) में अन्तर्निहित सिद्धांत यह था कि तरजीह व्यवहार वैध रूप से किया जा सकता है क्योंकि सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिये आवश्यक है कि कालान्तर में वे लोग अधिक उन्नत वर्गों के साथ बराबरी का स्थान ले सकें और (iii) यह सिद्धांत उन व्यक्तियों पर लागू किया जा सके जो विकलांग थे परन्तु उन पर नहीं जो अनुच्छेद 15(4) के अन्तर्गत आते है।

इन सिद्धांतों के आधार पर रक्षा कार्मिकों तथा भूतपूर्व रक्षा कार्मिकों के बच्चों के लिये वैध रूप से आरक्षण किए जा सकते थे। इन सिद्धांतों को मिसा और डी.आई.एस.आई.आर. के अधीन भूतपूर्व बन्दियों तथा उनके आश्रितों पर भी लागू करना अनुमत समझा जा सकता था। तथापि जहां तक सरकारी आदेश में विभिन्न जातियों के ''पिछड़ेपन'' की जांच-पड़ताल किये बिना हीं केवल जाति के आधार पर ''पिछड़े वर्गो'' के लिये आरक्षण की व्यवस्था थी। इसकी अनुच्छेद 15(4) और अनुच्छेद16(4) के अधीन पुष्टि नहीं की जा सकी।

जहां तक अनुच्छेद 15(4) तथा 16(4) में उल्लिखित नागरिकों का पिछड़ा वर्ग अभिव्यक्ति के विषय क्षेत्र और विस्तार का संबंध है, न्यायालय ने इस विषय पर संबंधित संवैधानिक उपबंधों और मुकदमों (केस लॉ) पर विचार किया। अनुच्छेद 366 (24) तथा (25) में दी गई है परन्तु ''नागरिकों के पिछड़े वर्ग'' की परिभाषा तो दी गई है परन्तु ''नागरिकों के पिछड़े वर्ग'' की परिभाषा करने वाला कोई खण्ड नहीं है। वस्तुतः अनुच्छेद 15(4) में पिछड़े वर्ग के लिये विशेष उपबंध थे जिसके अनुसार उन्हें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों जैसा हीं माना गया है। यह सोचा गया कि नागरिकों के कुछ अन्य वर्गों के लिये जो अनुसूचित जातियों और जनजातियों जैसे हीं या उनसे कुछ कम पिछड़े हुए हैं, उपबंध बनाए जाए। संविधान के अनुच्छेद 15(4) तथा अनुच्छेद 16(4) का यही प्रयोजन था।

तथापि अनुच्छेद 15(4) तथा 16(4) के अधीन अत्यधिक आरक्षण नहीं हो सकते थे।

उच्चतम न्यायालय ने देवदासन के मामले में, पिछड़े वर्गों के पक्ष में ''50 प्रतिशत से कम" आरक्षण का अनुमोदन किया था। पिछड़े वर्ग के निर्धारण में जाति का मानदण्ड एक आधार तो हो सकता था परन्तु इसे ही एकमात्र मानदण्ड नहीं माना जा सकता। न्यायालय ने बालाजी के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों का भी उल्लेख किया जिसमें 68 प्रतिशत के आरक्षण के आदेश अमान्य ठहरा दिये गये थे। न्यायालय ने कहा कि उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से पेश होने वाले महासालिसिटर ने यह स्वीकार किया कि सभी श्रेणियों के लिये आरक्षण 50 प्रतिशत से कम हो।

ऐसे आरक्षण करने वाली कार्यपालिका को चाहिए कि संविधान द्वारा उसे प्रदत्त प्राधिकार का वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अतिक्रमण न करें अन्यथा जैसे कि एस. आर. बालाजी के मामले में निर्धारित किया गया था संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के कपटपूर्ण ढंग से प्रयोग के लिये उक्त कार्रवाई को अमान्य ठहरा दिया जाएगा।

मुकदमे की समीक्षा करने के बाद न्यायालय ने ''पिछड़े वर्गो'' के निर्धारण संबंधी कानून का निम्नलिखित सार निकाला:-

(i) अनुच्छेद 15(4) में सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की अनुसूचित जातियों और जनजातियों के समान समझने और 336 (3) के उपबंध के अनुसार यह अर्थ लगाने से कि उनमें वे पिछड़े वर्ग भी शामिल है जिन्हें राष्ट्रपति अनुच्छेद 340(1) के अधीन नियुक्त आयोग की रिपोर्ट प्राप्त होने पर आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे, यह प्रकट होता है कि उनके पिछड़ेपन के मामले में उनकी तुलना अनुसूचित जातियों और जनजातियों से की जा सकती है।

(ii) पिछड़े वर्गों की संकल्पना इस अर्थ में साक्षेप नहीं है कि समुदाय में सबसे उन्नत वर्ग की तुलना में जो वर्ग पिछड़ा हुआ है उसे पिछड़े वर्ग में अवश्य शामिल किया जाए।

(iii) पिछड़ापन केवल सामाजिक या केवल शैक्षिक दृष्टि से नहीं बल्कि दोनों दृष्टियों से होना चाहिए।

(iv) अनुच्छेद15(4) में पिछड़ी जातियों का नहीं बल्कि ''पिछड़े वर्गों'' का निर्देश है। यदि जाति को हीं पिछड़ेपन का मानदण्ड बनाया जाए तो बहुत से समुदायों के मामले में जिनकी कोई जाति नहीं है यह मानदण्ड भंग हो जाएगा।

(V) सामाजिक दृष्टि से पिछड़ापन निर्धारित करने के लिये जाति का एक संगत कारक माना जा सकता है किन्तु यह एकमात्र या प्रमुख मानदण्ड नहीं हो सकता।

(vi) अन्ततः विश्लेषण करने पर पता चलता है कि सामाजिक दृष्टि से पिछड़ापन अत्यधिक गरीबी का परिणाम है। पिछड़ापन चूंकि गरीबी के कारण होता है इसलिये जाति की दृष्टि से विचार करने से ऐसे लोगों की गरीबी बढ़ जाने की संभावना है जो इस जाति विशेष के होंगे। लेकिन इससे तो पिछड़ापन निर्धारित करने के लिये जाति और गरीबी दोनों की संबद्धता और भी स्पष्ट हो जाती है।

(vii) अन्य संगत कारणों को ध्यान में रखे बिना केवल जाति पर आधारित वर्गीकरण अनुच्छेद 15(4) के अधीन अनुमत नहीं है। तथापि कुछ जातियां समग्र रूप से सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं।

(viii) कुछ वर्गों द्वारा किए जा रहे व्यवसाय (जो निम्नकोटि के समझे जाते हैं) पिछड़ेपन का कारण हो सकते हैं लोगों का स्थान विशेष में निवास करना भी पिछड़ेपन का कारण हो सकता है, क्योंकि एक तरह से सामाजिक दृष्टि से पिछड़ेपन की समस्या ग्रामीण भारत की समस्या है।

(ix) पिछड़े और अत्यन्त पिछड़े वर्गों में विभाजन वास्तव में आबादी का सबसे सम्पन्न व्यक्तियों और शेष व्यक्तियों के बीच विभाजन है। शेष व्यक्तियों को पिछड़े और सबसे पिछड़े वर्गों में विभाजित कर दिया गया है परन्तु अनुच्छेद 15(4) में इसका समर्थन नहीं किया गया है।

(x) अनुच्छेद 16(4) के अधीन किसी व्यक्ति को यह अपेक्षा करना का अधिकार नहीं है कि आरक्षण किया जाना चाहिए। यदि राज्य की राय में नागरिकों के किसी वर्ग का राज्य सेवाओं में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य को इस अनुच्छेद द्वारा इस प्रकार का आरक्षण करने का विशेषाधिकार प्रदान किया गया है। किसी जाति या वर्ग का राज्य सेवाओं में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व होने मात्र से हीं अनुच्छेद 16(4) लागू नहीं किया जा किया जा सकता जब तक वह वर्ग (कुल मिलाकर किसी जाति सहित) सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ न हो।

(xi) किसी वर्ग को पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल कर लेने के बाद यदि वह वर्ग भविष्य में हमेशा के लिये पिछड़ा हुआ माना जाता रहे तो आरक्षण का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। अतः राज्य की किसी निश्चित समय पर पिछड़े वर्गों की सूची और पिछड़े हुए निर्धारित कर दिए गये वर्गों के लिये आरक्षण की मात्रा को लगातार अत्यधिक समीक्षा करते रहना चाहिए।

(xii) विभिन्न श्रेणियों के लिये (पिछड़े वर्गो समेत) कुल मिलाकर आरक्षण 50 प्रतिशत से कम होना चाहिए, और

(xiii) न्यायालय को केवल इतना निश्चिय करने का अधिकार है कि नागरिकों के पिछड़े वर्ग निर्धारित करने के लिये राज्य द्वारा अपनाए गये मानदण्ड विधिमान्य हैं या नहीं। यदि राज्य

द्वारा सुसंगत मानदण्ड न अपनाए गये हों तो न्यायालय राज्य द्वारा तैयार की गई ''पिछड़े वर्गों'' की सूची में संशोधन नहीं कर सकता और न हीं आरक्षण की मात्रा में संशोधन कर सकता है परन्तु यह बात राज्य के ऊपर छोड़ते हुए कि वह सही मानदण्ड अपनाते हुए नए सिरे से उचित निर्णय ले, न्यायालय को आपत्तिजनक भाग अवश्य ठहरा देना चाहिए।

न्यायालय ने इस बात की जांच की कि जहां राज्य द्वारा पिछड़े वर्गों के विनिर्धारण के विरुद्ध चुनौती दी जाए वहां सबूत पेश करने का उत्तरदायित्व किस पर डाला जाए। उसने उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित दो निर्णयों का हवाला दिया- पंजाब राज्य बनाम हीरालाल, ए.आई.आर. 1971 उच्चतम न्यायालय 1977 जिसमें न्यायालय की मान्यता थी कि आरक्षण से अनुच्छेद 16(1) का उल्लंघन हुआ है और इसे सिद्ध करने का दायित्व दलील देने वाले व्यक्ति पर है। उत्तर प्रदेश बनाम प्रदीप टंडन ए.आई.आर. 1975 उच्चतम न्यायालय 563 के मामले में सबूत पेश करने का दायित्व दलील देने वाले व्यक्ति पर नहीं डाला गया। (यह सबूत पेश करने का भार राज्य पर है कि आरक्षण सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गो के नागरिकों के लिये है)।

न्यायालय का विचार था कि हीरालाल और प्रदीप टंडन के मामलों में सबूत पेश करने के भार संबंधी परस्पर विरोधी विचारों का समाधान किया जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि जिन मामलों में किसी वर्ग के पिछड़ेपन के बारे में सरकार द्वारा उचित जांच-पड़ताल नहीं की गई है उनमें सरकारी आदेश अमान्य ठहरा दिये गये हैं जैसे कि त्रिलोकी नाथ (ए.आई.आर.1969, उच्चतम न्यायालय 1); जानकी प्रसाद बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य (ए.आई.आर.1973, उच्चतम न्यायालय 930),एम.आर.बालाजी (ए.आई.आर. 1963, उच्चतम न्यायालय 649) और आन्ध्रप्रदेश राज्य बनाम पी. सागर, ए.आई.आर. 1968 उच्चतम न्यायालय 1379 के मामलों में किया गया है। दूसरी ओर जहां प्रार्थियों ने चुनौती के लिये कोई आधार नहीं बनाया तथा यह बताने में असफल रहे कि कोई वर्ग पिछड़े वर्गों में गलत शामिल कर लिया गया है, ऐसी चुनौती रद्द कर दी गई है जैसा कि पी. राजेन्द्रन बनाम मद्रास राज्य (ए.आई.आर. 1988 उच्चतम न्यायालय 1012) तथा पंजाब राज्य बनाम हीरालाल (ए.आई.आर. 1971 उच्चतम न्यायालय 1777) में किया गया है। अतः सबूत पेश करने का दायित्व मिला हुआ है। जैसा कि हीरालाल के मामले में न्यायालय की मान्यता थी, नियुक्तियों का आरक्षण काल्पनिक आधार पर अमान्य नहीं ठहराया जा सकता। किन्तु जैसा कि पी. सागर के मामले में निर्धारित किया गया यह सरकार का कर्त्तव्य था कि ''साक्ष्य और तर्क द्वारा न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित करे कि गारंटी किये गये अधिकार का उल्लंघन नहीं हुआ है''।

प्रार्थी के शपथ-पत्र और राज्य के प्रति शपथ-पत्र तथा इसमें उल्लिखित कामकाज आदि (जैसे कि छेदी लाल सेठी आयोग की रिपोर्ट तथा काका कालेलकर आयोग की रिपोर्ट) की जांच करने के बाद न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि ''न तो आरोपित सरकारी आदेश से और न ही राज्य की ओर से दायर किये गये प्रति शपथ-पत्र से पता चलता है कि राज्य सरकार ने कोई अन्य सर्वेक्षण या किसी अन्य प्रकार से आंकड़े एकत्रित करने का कार्य किया था। उसी प्रकार से जहां तक शिक्षा विभाग द्वारा तैयार की गई सूची का संबंध है, प्रति शपथ-पत्र में इस बात का उल्लेख नहीं है कि उस समय इन जातियों को किस आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए नागरिकों की श्रेणी में पाया गया था। इस प्रकार कोई जांच-पड़ताल नहीं की गई। संक्षेप में, न्यायालय का विचार था कि राज्य द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार कि उल्लिखित जातियां पिछड़ी हुई थी, पहले नष्ट नहीं किया गया था। न्यायालय ने इस बात पर भी बल दिया कि यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने अनेक मामलों में जातियों के आधार पर पिछड़े वर्गों की गणना करने की बात का समर्थन किया है परन्तु इन सभी मामलों में जाति विशेष समग्र रूप से सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी हुई थी। ''उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 16(4) के अनुसार केवल ऐसी जातियों को वैध रूप से सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी हुई जातियां मानना स्वीकार किया है''।

जहां तक इस बात को सिद्ध करने के दायित्व का संबंध है, न्यायालय का विचार था कि प्रार्थियों ने विशिष्ट रूप से इस अभिकथन द्वारा अपना दायित्व पूरा कर लिया था कि कम से कम दो जातियां ऐसी थी जो आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी हुई नहीं थी। राज्य ने इसका खंडन करने के लिये कोई कागजात पेश नहीं किए हैं। ''मौजूदा'' हालात में किसी नागरिक का अपनी निजी हैसियत से विस्तृत जांच-पड़ताल करना और पूरे राज्य में सर्वेक्षण करना या संबंधित आंकड़े जुटाना सम्भव नहीं है। केवल सरकारी साधनों का प्रयोग करके हीं ऐसे आंकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं और न्यायालय में दिए जा सकते हैं''।